ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2022; 8(6): 341-345
www.allresearchjournal.com
Received: 12-03-2022
Accepted: 24-04-2022

Prashant
Research Scholar, University of Delhi, New Delhi, India

Corresponding Author:
Prashant
Research Scholar, University of Delhi, New Delhi, India

शाब्दबोध-स्वरूप एवं वैयाकरणमत

Prashant

सारांश

प्रस्तुत शोधपत्र में शाब्दबोध के स्वरूप पर विचार किया गया है। वाक्य को सुनकर पद एवं पदार्थ के बोध के पश्चात् जो वाक्यार्थ एकाकार समन्वित रूप में होता है, उसी को शाब्दबोध कहते हैं। शब्दजन्य होने से इस ज्ञान को शाब्दज्ञान भी कहते हैं। शाब्दबोध में पद का ज्ञान मुख्य कारण है और पदार्थज्ञान आदि 'सहकारी कारण' हैं। सहकारी कारण चार प्रकार के हैं- आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति और तात्पर्य। आकांक्षा- वाक्यसमयग्राहिका 'आकांक्षा'। वाक्य के संकेत का ज्ञान कराने वाली 'आकांक्षा' है। योग्यता- 'योग्यता च परस्परान्वयप्रयोजकधर्मवत्वम्।' पदार्थों का पारस्परिक अन्वय के हेतुभूत धर्म से युक्त होना 'योग्यता' कहलाती है। आसत्ति- प्रकृतान्वयबोधाननुकूलपदाव्यवधानम् 'आसत्ति'। वाक्य में प्रासंगिक अन्वय-बोध के प्रतिकूल पदों का व्यवधान न होना 'आसत्ति' कहलाती है। वैयाकरणों के मतानुसार किसी भी वाक्य में क्रिया की प्रधानता होती है। वाक्य में उपस्थित पदों में अन्य पदों की अपेक्षा क्रिया प्रधान होती है अर्थात् धात्वर्थ मुख्यविशेष्यक शाब्दबोध होता है। क्रिया के मुख्य होने के कारण वाक्य में क्रिया मुख्यविशेष्यक है, शेष सभी पद क्रिया के प्रकार अथवा विशेषण होते हैं।

कूटशब्द: शाब्दबोध, शाब्दबोध का स्वरूप, शाब्दबोध-विचार, शाब्दबोध-विमर्श, वैयाकरणमतानुसार शाब्दबोध-स्वरूप, शब्दजन्य शाब्दबोध, शाब्दबोध में पद का ज्ञान मुख्य कारण, पदार्थज्ञान के सहकारी कारण, सहकारी कारण, आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति, तात्पर्य, आकांक्षा- वाक्यसमयग्राहिका 'आकांक्षा', योग्यता- 'योग्यता च परस्परान्वयप्रयोजकधर्मवत्वम्।' आसत्ति- प्रकृतान्वयबोधाननुकूलपदाव्यवधानम् 'आसत्ति'। धात्वर्थ मुख्यविशेष्यक शाब्दबोध होता है

परिचय

पदों से ही वाक्य का निर्माण होता है। इस वाक्य-निर्माण-प्रक्रिया में मीमांसक और नैयायिक पदों को सत् मानते हैं और वैयाकरण पदों को असत् मानते हैं। तथापि वाक्य-निर्माण-प्रक्रिया सभी मतों में समान है। दोनों ही प्रकार से पदों से ही वाक्य का निर्माण होता है। किसी भी वाक्य को सुनकर पद एवं पदार्थ के बोध के पश्चात् जो वाक्यार्थ एकाकार समन्वित रूप में होता है, उसी को शाब्दबोध कहते हैं।

शब्दजन्य होने से इस ज्ञान को शाब्दज्ञान भी कहते हैं। अन्नंभट्ट के अनुसार वाक्यार्थ-ज्ञान को ही शाब्दज्ञान अथवा शाब्दबोध कहते हैं और शब्द इसका करण है।[1] शब्दबोध की इस प्रक्रिया को लेकर अर्वाचीन न्याय-ग्रन्थों में से 'न्यायसिद्धान्तमुक्तावली' में इसकी विस्तृत चर्चा प्राप्त होती है।[2] सबसे पहले पदों (सुबन्त-तिङन्त और अव्यय शब्दों) का ज्ञान होता है, उसके बाद पदों से शक्ति (शब्दगत अभिधा, लक्षणा रूप वृत्ति) ज्ञान के सहयोग से पदार्थों (शक्य, लक्ष्य) का बोध होता है और यहाँ अभिधा के द्वारा शक्य की उपस्थिति होती है और लक्षणा के द्वारा लक्ष्यार्थ की उपस्थिति होती है। उसके पश्चात् आकांक्षाज्ञान, योग्यताज्ञान, आसक्तिज्ञान और तात्पर्यज्ञान के सहयोग से वाक्यार्थबोध होता है।[3] उसे ही शाब्दबोध कहते हैं।

शाब्दबोध के करण की प्रक्रिया में न्यायदर्शन में दो मत प्रस्तुत हैं। प्राचीन नैयायिकों के अनुसार ज्ञायमान पद ही करण है। वहीं नवीन नैयायिक ज्ञायमान पद को करण न मानकर पदज्ञान को ही करण मानते हैं,[4] क्योंकि पद को करण मानने पर तो पद के न होने पर भी मौनिश्लोक की हस्तचेष्टा आदि से जिस शाब्दज्ञान की उत्पत्ति होती है, वह नहीं होगी। इसी प्रकार सांकेतिक भाषा से वाक्यार्थ-बोध भी तभी सम्भव है जब पद के ज्ञान को करण माना जाता है। इस शाब्दज्ञान की उत्पत्ति के लिए पदज्ञान ही करण है, ज्ञायमान पद करण नहीं है।

नव्यन्याय के अनुसार शाब्दज्ञान में पद 'एक सम्बन्धिज्ञानमपरसम्बन्धिस्मारकम्' न्याय के द्वारा पदार्थ का स्मरण कराते हैं। इस न्याय का अभिप्राय यह है कि जब किसी व्यक्ति को एक सम्बन्धी का ज्ञान हो जाता है तब स्वतः ही उस व्यक्ति को दूसरे सम्बन्धी का स्मरण हो जाता है क्योंकि इस सम्बन्ध के कारण ही दोनों जुड़े होते हैं। जैसे यदि एक व्यक्ति कहे कि वह पिता है इससे यह स्पष्ट होता है कि उसकी कोई सन्तान अवश्य होगी क्योंकि पद और पदार्थ के मध्य सम्बन्ध है और वह सम्बन्ध वृत्ति है। वाक्य से सभी पदार्थों की उपस्थिति के बाद एक पदार्थ के साथ अपर पदार्थ के संसर्ग (सम्बन्ध) का बोध ही शाब्दबोध होता है।[5] उदाहरणतः 'चैत्रः हरिं भजति' इस वाक्य में सबसे पहले चैत्र+सुप्, हरि+अम्, भज् धातु, तिप् आख्यात आदि उपस्थित हैं। इन पदों का ज्ञान होने पर ही इनकी शक्ति का स्मरण होता है। 'चैत्र' पद अभिधा शक्ति के माध्यम से 'चैत्र' नामक व्यक्ति का ज्ञान कराता है, 'हरि' शब्द से हरि अर्थ का, 'अम्' पद से कर्मत्व का, 'भज्' धातु से प्रीत्यनुकूलव्यापार का और 'तिप्' आख्यात कृति का ज्ञान कराता है और आख्यात से प्राप्त अर्थ कृति कर्ता से सम्बद्ध होता है और यह अर्थ कर्ता में विशेषण रूप में भासित होता है। शक्तिज्ञान के बाद चैत्र आदि अनेक पदार्थों का ज्ञान होता है। इस प्रसंग में पद या पदार्थ में आकांक्षा, योग्यता, आसक्ति आदि का ज्ञान भी रहता है इसलिए उपरोक्त वाक्य से 'हरिकर्मकप्रीत्यनुकूल कृतिमान् चैत्रः' रूप शाब्दबोध होता है।

शाब्दबोध के सहकारी कारण

'सहकारी कारण' वे कारण होते हैं जो मुख्य कारण से उत्पन्न होने वाले कार्य के जनक होते हैं और जिसके नहीं होने पर प्रमुख कारण, कार्य का जनक नहीं हो सकता, उसे सहकारी कारण कहते हैं। शाब्दबोध में पद का ज्ञान मुख्य कारण है और पदार्थज्ञान आदि 'सहकारी कारण' हैं।[6] सहकारी कारण चार प्रकार के हैं- आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति और तात्पर्य।

आकांक्षा- वाक्यसमयग्राहिका 'आकांक्षा'।[7] वाक्य के संकेत का ज्ञान कराने वाली 'आकांक्षा' है। 'आकांक्षा' व्यक्ति की इच्छा होती है। इच्छा आत्मा का धर्म है और समवाय सम्बन्ध से वह श्रोता में ही रहती है। तथापि आकांक्षा का शब्द के अर्थ में आरोप कर लिया जाता है क्योंकि 'आकांक्षा' पदार्थ-विषयक होती है। व्यवहार में अर्थ को कभी-कभी साकांक्ष कह देने के कारण यह आरोप किया जाता है। 'आकांक्षा' ज्ञान का विषय तब बनती है जब श्रोता किसी शब्द को सुनकर उसके अर्थ का बोध कर कर लेता है किन्तु अन्य पदार्थ के बोधक किसी शब्द को वह नहीं सुन पाता। इस स्थिति में श्रोता को यह बोध होता है कि सुना गया शब्द निराकांक्ष अर्थ के बोधक नहीं है। उस ज्ञान का विषय सुना हुआ शब्द होता है इसलिए उस शब्द को साकांक्ष अर्थात् आकांक्षा से युक्त कहते हैं। फिर भी वह शब्द अन्वय-बोध का जनक नहीं होता है। यथा- 'अश्वं

---

[1] वाक्यार्थज्ञानं शाब्दज्ञानम्। तत्करणं तु शब्दः। तर्कसंग्रह, शब्दखण्ड, पृ. सं. 158

[2] पदज्ञानं तु करणं द्वारं तत्र पदार्थधीः। शाब्दबोधः फलं तत्र शक्तिधीः सहकारिणी॥ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, शब्दखण्ड, कारिका 81

[3] आसत्तियोग्यताऽकांक्षा तात्पर्यज्ञानमिष्यते। न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, शब्दखण्ड, कारिका 82

[4] पदज्ञानं त्विति। न तु ज्ञायमानं पदं करणम्। पदाभावेऽपि मौनिश्लोकादौ शाब्दबोधात्। न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, शब्दखण्ड, पृ. सं. 263-264

[5] एकपदार्थेऽपरपदार्थसंसर्गविषयकं ज्ञानं शाब्दबोधः। तर्कसंग्रह बालबोधिनी टीका, शब्दखण्ड, पृ. सं. 57

[6] पदज्ञानं तु करणं द्वारं तत्र पदार्थधीः। शाब्दबोधः फलं तत्र शक्तिधीः सहकारिणी॥ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, शब्दखण्ड

[7] वैयाकरणसिद्धान्तपरमलघुमञ्जूषा पृ. सं. 113

आनय' इस उदाहरण में यदि मात्र 'अश्वम्' पद का ही उच्चारण करें तो 'अश्व' व्यक्ति का बोध होने पर भी, 'आनय' पद के उच्चारण न करने पर अर्थज्ञान के अभाव में जो यह बोध होता है कि 'अश्व' शब्द अन्वय-बोध का जनक नहीं है, यही बोध आकांक्षा को उत्पन्न करता है। अश्व शब्द का अर्थ ही आकांक्षा के हेतुभूत इस बोध का विषय है। प्रस्तुत उदाहरण में 'अश्व' पद में निराकांक्ष अर्थ का बोध उत्पन्न करने की शक्ति नहीं है तथापि उसके लिए 'आकांक्षा' का व्यवहार होता है।

योग्यता- 'योग्यता च परस्परान्वयप्रयोजकधर्मवत्वम्।'[8] पदार्थों का पारस्परिक अन्वय के हेतुभूत धर्म से युक्त होना 'योग्यता' कहलाती है। वाक्य का निर्माण करने वाले पदों में योग्यता का निर्धारण उन पदों में विवक्षितार्थ की बाधा-हीन अभिव्यक्ति के आधार पर किया जाता है। यदि पदों के किसी समूह के विवक्षितार्थ में कोई बाधा आ जाए तो पदों के उस समूह में योग्यता का अभाव माना जाता है। ऐसी स्थिति में पद-समूह को वाक्य के रूप में घटित नहीं माना जाता है। मनुष्य का लौकिक अनुभव ही विवक्षितार्थ में बाधा का निर्णय करता है। जैसा मनुष्य के मन में पदार्थ का अनुभव होता है, वैसा ही भाषिक अर्थ का ज्ञान होता है। यदि इसके विपरीत होने पर विवक्षितार्थ में बाधा होती है। अतः अनुभव के विरुद्ध पदार्थों में योग्यता के अभाव के कारण वाक्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता है। जैसे किसी व्यक्ति के द्वारा 'आग गर्म होती है' के स्थान पर 'आग ठंडी होती है' ऐसा प्रयोग करने पर योग्यता के अभाव के कारण वह वाक्य अवाक्य माना जाता है।

आसत्ति- प्रकृतान्वयबोधाननुकूलपदाव्यवधानम् 'आसत्ति'।[9] वाक्य में प्रासंगिक अन्वय-बोध के प्रतिकूल पदों का व्यवधान न होना 'आसत्ति' कहलाती है। अभिप्राय यह है कि उच्चारण किये गये पदों का प्रसंगानुकूल जो अन्वय-ज्ञान, उसके विपरीत अर्थ वाले पदों का मध्य में न आना ही आसत्ति है। अर्थात् अन्य शब्दों में विपरीतार्थक पदों का अभाव। जैसे- 'रामः गच्छति'। इस वाक्य में 'रामः' और 'गच्छति' इन दोनों ये दो पद हैं। 'रामः' और 'गच्छति' पदार्थों के बीच अन्य प्रतिकूल शब्द नहीं है इसलिए यहाँ आसत्ति है। यदि इस वाक्य में अन्वय के प्रतिकूल शब्द का व्यवधान होता तो यह 'आसत्ति' अभाव है। वहीं वाक्य में किसी अनुकूल-अन्वय के बोधक शब्द का प्रयोग होता है, वह भी 'आसत्ति' है। जैसे- 'रामः ग्रामं गच्छति' इस वाक्य में 'रामः' और 'गच्छति' के मध्य जो 'ग्राम' शब्द का व्यवधान है, वह प्रतिकूल न होकर अनुकूल ही है इसलिए यहाँ व्यवधान होने पर भी 'आसत्ति' है क्योंकि 'आसत्ति' के लिए केवल अन्वय-ज्ञान के प्रतिकूल अर्थ का बोधक शब्द का व्यवधान अवांछनीय है।

तात्पर्य- एतद्वाक्यं पदं वा एतदर्थबोधायोच्चारणीयम्- इतीश्वरेच्छा तात्पर्यम्।[10] इस अर्थ के ज्ञान के लिए इस पद या वाक्य का उच्चारण करना चाहिए- इस प्रकार की ईश्वर की इच्छा 'तात्पर्य' है। अनेकार्थक शब्द के प्रयोग स्थान में वक्ता की इच्छा को ही 'तात्पर्य' कहते हैं और इनके अर्थ का नियमन लोकव्यवहार में प्रकरण आदि होते हैं। उदाहरणस्वरूप वक्ता एक वाक्य 'सैन्धवम् आनय' का प्रयोग करता है। 'सैन्धवम्' शब्द के दो अर्थ लवण और घोड़ा हैं। इस स्थिति में अर्थ का निर्णय प्रकरण से किया जाता है। यदि वक्ता 'सैन्धवम्' शब्द का प्रयोग भोजन के प्रकरण में करता है तो 'लवण' का अर्थज्ञान होगा और यात्रा के प्रकरण में करता है तो 'घोड़े' का अर्थज्ञान होगा।

शाब्दज्ञान का आकार

शाब्दबोध किस आकार का होता है अर्थात् शाब्दबोध किस रूप वाला होता है? वाक्य के सम्पूर्ण पदार्थों में से कौन किसका विशेषण और कौन किसका विशेष्य होगा? क्या वाक्य में विशेष्य ही वाच्यार्थ होता है या वाक्य में मुख्यार्थ क्रिया होती है?

वैयाकरणमतानुसार शाब्दबोध-स्वरूप

वैयाकरणों के मतानुसार किसी भी वाक्य में क्रिया की प्रधानता होती है। वाक्य में उपस्थित पदों में अन्य पदों की अपेक्षा क्रिया प्रधान होती है अर्थात् धात्वर्थ मुख्यविशेष्यक शाब्दबोध होता है।[11] क्रिया के मुख्य होने के कारण वाक्य में क्रिया मुख्यविशेष्यक है, शेष सभी पद क्रिया के प्रकार अथवा विशेषण होते हैं। धात्वर्थ (व्यापार) मुख्यविशेष्यक शाब्दबोध में वैयाकरणों ने यास्क को प्रमाण माना है।[12] वैयाकरणों के मत में शाब्दबोध समझने के लिए यह आवश्यक है कि इससे पूर्व यह जान लिया जाए कि वाक्य में कौन-कौन से पद विद्यमान हैं? उनका अर्थ क्या है? और किस-किस सम्बन्ध से उन सभी में क्रिया से अन्वय होता है? उदाहरण के लिए 'रामः तण्डुलं पचति' यह एक वाक्य है। इस वाक्य में प्रथम पद 'राम' है। इस पद में भी दो अंश राम+सुप् हैं। 'राम' पद मूल

[8] वैयाकरणसिद्धान्तपरमलघुमञ्जूषा पृ. सं. 117

[9] वैयाकरणसिद्धान्तपरमलघुमञ्जूषा पृ. सं. 121

[10] वैयाकरणसिद्धान्तपरमलघुमञ्जूषा, पृ. सं. 122

[11] वैयाकरणास्तु धात्वर्थमुख्यविशेष्यक एव शाब्दबोधः। तर्कसंग्रह, सिद्धान्तचन्द्रोदय टीका, शब्दखण्ड

[12] भावप्रधानमाख्यातम्। निरुक्त, 1/1/1

अर्थात् प्रातिपदिक है और 'सुप्' प्रत्यय है। राम का अर्थ है रामत्वविशिष्ट द्रव्य। वैयाकरण प्रातिपदिक के पाँच अर्थ मानते हैं[13] परन्तु सभी पाँच नहीं मानते। स्वार्थ (जाति), द्रव्य, लिङ्ग, संख्या और कारक ये पाँच अर्थ होते हैं जिन्हें पतञ्जलि 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ'[14] और 'अनभिहिते'[15] सूत्र के भाष्य में प्रातिपदिक के अर्थ के विषय में कहते हैं कि जाति आदि पाँच अर्थ प्रातिपदिक शब्द के ही वाच्यार्थ मानने चाहिए। वैयाकरणों के मत में प्रातिपदिक से शब्दों के अर्थों का ज्ञान हो जाता है। अतः प्रातिपदिक से 'सुप्' विभक्ति लगाना आवश्यक नहीं परन्तु फिर भी व्याकरणात्मक पद की रचना के लिए प्रातिपदिक से 'सुप्' विभक्ति का प्रयोग करना पड़ता है क्योंकि यह नियम है कि वाक्य में केवल प्रकृति या केवल प्रत्यय का प्रयोग नहीं करना चाहिए।[16]

वाक्य में प्रयुक्त अन्य पद 'तण्डुलम्' के भी दो अंश हैं- 'तण्डुल' प्रातिपदिक शब्द और 'अम्' प्रत्यय। 'चैत्र' पद के तुल्य 'तण्डुल' की तण्डुलआदि विशिष्ट में शक्ति होती है और जाति इत्यादि पाँच अर्थ होते हैं किन्तु इन दोनों पदों में भेद यह है कि चैत्रत्व को जाति के रूप में भी स्वीकार अथवा अस्वीकार किया जा सकता है, वहीं 'तण्डुल' वाच्यार्थ तण्डुलत्व एक जाति या सामान्य है और 'अम्' प्रत्यय का अर्थ कर्मकारक है।

उपरोक्त वाक्य में तृतीय पद 'पचति' है। इसके भी दो अंश 'पच्'+'तिप्' हैं। प्राचीन वैयाकरणों ने 'पच्' धातु का अर्थ व्यापार और फल दोनों माना है।[17] अतः 'पच्' धातु का अर्थ पाकक्रिया है। पाक-क्रिया मात्र एक क्रिया नहीं होती है, उसमें बहुत सी अन्य क्रियाएँ भी सम्मिलित होती हैं। जैसे पाकक्रिया में तण्डुल वाले पात्र को चूल्हे पर चढ़ाने से लेकर पात्र को चूल्हे से नीचे उतारने तक सभी प्रकार की क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं।[18] अर्थात् पाकक्रिया में आदि से लेकर अन्त तक अनेक व्यापार क्रमबद्धरूप में उपस्थित होते हैं। प्राचीन वैयाकरणों के अनुसार धात्वर्थ 'फल' जनकता सम्बन्ध से धात्वर्थ 'व्यापार' में विशेषण होता है।[19]

नवीन वैयाकरण नागेश ने 'फल' और 'व्यापार' दोनों को अलग-अलग धातु का अर्थ नहीं माना है और वे 'फलानुकूल व्यापार' अथवा 'व्यापारावच्छिन्न फल' को ही धातु का अर्थ मानते हैं।[20] कर्तृवाच्य के प्रयोग में 'फलानुकूल व्यापार' और कर्मवाच्य के प्रयोग में 'व्यापारजन्य फल' की प्रतीति होती है। नागेश 'फल' और 'व्यापार' में धातु की अलग-अलग शक्ति मानने वाले मत में दोष बताते हैं।[21] 'पचति' पद का अपर अंश 'तिप्' प्रत्यय है जिसका अर्थ कर्ता, कर्म, काल तथा संख्या माना गया है।[22] वैयाकरण-मतानुसार कर्ता का वाक्य के कर्ता के साथ समवाय सम्बन्ध से अन्वय होता है। प्रत्ययार्थ संख्या का कर्तृवाच्य में, प्रत्ययार्थ कर्ता में और कर्मवाच्य में कर्म में अन्वय होता है। प्रत्ययार्थ कर्ता एवं काल का वृत्तिता सम्बन्ध से धातु का अर्थ व्यापार में अन्वित होता है।[23] 'अम्' प्रत्ययार्थ कर्म में, 'अम्' के एकत्व का अभेद सम्बन्ध से, तण्डुल रूप प्रकृत्यर्थ का आधेयता सम्बन्ध से धात्वर्थ फल में अन्वय होता है और फलजन्यत्व सम्बन्ध से व्यापार में अन्वय होता है इसलिए क्रिया की प्रधानता के कारण 'चैत्रः तण्डुलं पचति' इस वाक्य से वैयाकरणों के मतानुसार 'चैत्राभिन्नैकत्वावच्छिन्नाश्रयवृत्तिः तण्डुलनिष्ठविक्लित्यनुकूलवर्तमानकालिको व्यापारः' ऐसा शाब्दज्ञान होता है। इस शाब्दबोध में व्यापार पद ही प्रधानरूप से विशेष्य है और दूसरे समस्त शब्द उसके विशेषण हो गये हैं।[24] यही धात्वर्थमुख्यविशेष्यक शाब्दबोध कहलाता है।

वहीं कर्मवाच्य वाले वाक्य 'चैत्रेण तण्डुलः पच्यते' में, वैयाकरणों के अनुसार 'चैत्राभिन्नकर्तृवृत्तिवर्तमानकालिकव्यापारजन्यतण्डुलाभिन्नैकत्वावच्छिन्नाश्रयवृत्तिरविक्लितिः' इस प्रकार का शाब्दबोध होता है, जिसका अर्थ तण्डुल से अभेद और

---

[13] स्वार्थद्रव्यलिङ्गसंख्याकारकात्मकः पञ्चकं प्रातिपदिकार्थः। वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, तत्वबोधनी टीका 2/3/46

[14] अष्टाध्यायी, 1/2/64

[15] अष्टाध्यायी, 1/3/1

[16] न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या नापिकेवलः प्रत्ययः। महाभाष्य, 1/2/64

[17] फलव्यापारयोर्धातुः। वैयाकरणभूषणसार, धात्वर्थनिरुपण, कारिका 2

[18] गुणभूतैरवयवैः समूहः क्रमजन्यनाम्। बुद्ध्या प्रकल्पिताभेदः क्रियेति व्यपदिश्यते॥ वाक्यपदीयम्, 3/8/4

[19] फले प्रधानं व्यापारस्तिङर्थस्तु विशेषणम्। वैयाकरणभूषणसार, धात्वर्थनिरूपण, कारिका 2

[20] तस्मात् फलावच्छिन्ने व्यापारे व्यापारावच्छिन्ने फले च धातूनां शक्तिः। वैयाकरणसिद्धान्तपरमलधुमञ्जूषा धात्वर्थनिरूपण, पृ. 131

[21] वैयाकरणसिद्धान्तपरमलघुमञ्जूषा, धात्वर्थनिरूपण, पृ. 131

[22] तिङर्थः कर्तृकर्मसंख्याकालाः तत्र-कर्मणी फल व्यापारयो-विशेषणो संख्याकर्तृप्रत्ययेकर्तरि, कर्मप्रत्यये कर्मणि, समानप्रत्ययोपात्तत्वात्। वैयाकरणभूषणसार, धात्वर्थनिरूपण, कारिका 2

[23] तत्र तिङवाच्यं-ससंख्या-विशिष्ट-कारकं कालश्च-व्यापार-विशेषणम्। वैयाकरणसिद्धान्तपरमलघुमञ्जूषा, धात्वर्थनिरूपण, पृ. 130

[24] भाट्टचिन्तामणि, आख्यातवाद, पृ. 79

एकत्व संख्या से विशिष्ट आश्रय में विक्लिति रूप फल रहता है।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. अष्टाध्यायी सूत्रपाठ: पाणिनि, सम्पा. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, रामलालकपूर ट्रस्ट, बहालगढ, सोनीपत, वि. सं. 2050.
2. वाक्यपदीयम्: भर्तृहरि, सम्पा. के. वी. अभ्यङ्कर एवं पी. वी. लिमये, भाग-2, पूना विश्वविद्यालय, पूना, 1965.
3. वाक्यपदीयम्: भर्तृहरि, सम्पा. के. राघवन् पिल्लई, त्रिवेन्द्रम्, 1971.
4. वाक्यपदीयम्: भर्तृहरि, वृत्ति एवं वृषभदेवकृत पद्धति टीका सहित, काण्ड-1, सम्पा. के. ए. सुब्रह्मण्य अय्यर, डेक्कन कॉलेज, पूना, 1966.
5. वाक्यपदीयम्: भर्तृहरि, काण्ड-2, वृत्ति एवं पुण्यराज की टीका सहित, सम्पा. के. ए. सुब्रह्मण्य अय्यर, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1983.
6. वाक्यपदीय: भर्तृहरि, काण्ड-3, भाग-1, वृत्ति एवं पुण्यराज की टीका सहित, सम्पा. के. ए. सुब्रह्मण्य अय्यर, पूना, 1973.
7. वाक्यपदीयम्: भर्तृहरि, (पुण्यराजकृत प्रकाश सहित) मेसर्स बी. बी. दास एण्ड कम्पनी, बनारस, 1887.
8. वाक्यपदीयम्: (भाग 1-3) भर्तृहरि, (टीका अम्बाकर्त्री सहित) सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1968.
9. वैयाकरणभूषणसार: कौण्डभट्ट, दर्पण हिन्दी भाष्योपेतः, अनु. श्री ब्रह्मदत्त द्विवेदी, चौखम्बा ओरियन्टालिया, दिल्ली, 1985.
10. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी: भट्टोजिदीक्षित, (बालमनोरमाव्याख्यासहिता) (कारकान्तः प्रथमो भागः) सम्पा. पण्डित श्रीगोपालशास्त्री नेने, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि. सं. 2039.
11. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी: भट्टोजिदीक्षित, (बालमनोरमा तत्त्वबोधिनी सहित) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1979.
12. वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा: नागेशभट्ट, सम्पा. कालिकाप्रसाद, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, 1977.
13. वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा: नागेशभट्ट, सम्पा. कपिलदेव शास्त्री, विशाल प्रकाशन, कुरुक्षेत्र, 1985.
14. वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा: नागेशभट्ट, सम्पा. रामप्रसाद त्रिपाठी, गंगानाथझा ग्रन्थमाला, वाराणसी, 1990.
15. वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा: नागेशभट्ट, (कुञ्जिकाकलाभ्यां सहिता) चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1989.
16. वैयाकरणसिद्धान्तपरमलघुमञ्जूषा: नागेशभट्ट, सम्पा. लोकमणि दाहाल, चौखम्बासुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2006.
17. व्याकरणमहाभाष्य: पतञ्जलि, (1-5 अह्निक) चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1978.
18. व्याकरणमहाभाष्यम्: पतञ्जलि, कैय्यटकृत 'प्रदीप' एवं नागेशकृत उद्योत टीका सहित प्रथम खण्ड (नवाह्निकम्) चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली (निर्णयसागर प्रेस, बम्बई के संस्करण से पुनर्मुद्रित), 1987
19. व्याकरणमहाभाष्यम्: पतञ्जलि, (प्रदीपोद्योतसहित) खण्ड 2-6, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली (निर्णयसागर प्रेस, मुम्वई के संस्करण से पुनर्मुद्रित), 1988.
20. शाब्दबोधविमर्श: बदरीनाथ सिंह, वाराणसी, 1975.
21. शाब्दबोधमीमांसा: ताताचार्य, एन. एस. रामानुज, सुबर्थविचारात्मकः, द्वितीयो भागः, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 2006.
22. संस्कृत व्याकरण दर्शन: त्रिपाठी, रामसुरेश, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1972.
23. अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन: द्विवेदी, कपिलदेव, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2000.
24. व्याकरण की दार्शनिक भूमिका: वर्मा, सत्यकाम, भारतीय प्रकाशन, दिल्ली, 1971.
25. श्लोकवार्तिकम्: कुमारिलभट्ट, कामेश्वरसिंह दरभङ्गा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभङ्गा, 1979.